हमारा दौर और मानवाधिकार की शिक्षा

मानवाधिकार दिवस

सरोज कुमार शुक्ल

बीसवीं सदी एक ऐसी सदी के रूप में याद की जाएगी, जिसने मनुष्य की गरिमा और स्वतंत्रता में कई ऐसे उतार-चढ़ाव देखे, जो अभूतपूर्व हैं। यह एक ऐसी सदी थी, जिसने औपनिवेशिक दासता के शिकार लोगों की आजादी के लिए लड़ाई देखी। इसी सदी में रूसी-चीनी क्रांति भी हुई। इस सदी ने दो विश्वयुद्धों की पीड़ा को भी सहा। इस दौरान जघन्य अपराध, सामूहिक नरसंहार, सामूहिक बलात्कार, आतंकवाद तथा फासिस्टों एवं नाजियों द्वारा क्रूर बल प्रयोग हुए। एटमी एवं रासायनिक हथियारों का कोप भी इस सदी ने भुगता। 21वीं सदी की यह बड़ी दरकार है कि मानवाधिकारवादी शिक्षा और सरोकारों पर जोर बढ़े ताकि मानवता को पिछली सदी में जो कीमत चुकानी पड़ी, वह आगे न चुकानी पड़े।

मानवाधिकार शिक्षा की गुंजाइश तथा उसकी उम्मीद इस यकीन से उपजती है कि मनुष्य अपने समाज व साथियों के हित की चिंता करने में सक्षम है। इस विश्वास की जड़ें अन्य मनुष्यों के लिए मनुष्य की स्वाभाविक सामान्य चिंता में निहित है। किंतु इससे भी कहीं अधिक प्रबल आधार कुछ मनुष्यों या समूहों द्वारा अपने समाज व साथियों के कल्याण के लिए किए जाने वाले त्याग में है। मानवीय स्वभाव का यह आयाम इस अर्थ में अधिक महत्वपूर्ण है कि इसने अपने ऐतिहासिक लक्ष्य- 'एक मानवीय लोकतांत्रिक, शांतिपूर्ण तथा खुशहाल विश्व के निर्माण के लक्ष्य को पाने का दायित्व पूरा नहीं किया है।' एक बेहतर दुनिया बनाने के इस सपने को यूनानियों तथा रोमन दासों द्वारा की गई कोशिशों में देखा जा सकता है। आगे ये कोशिशें आंदोलनात्मक परिणतियों को प्राप्त हुईं। ब्रिटेन में 1215 में मैग्ना कार्टा, मनुष्य एवं नागरिकों के अधिकारों संबंधी फ्रांसीसी राष्ट्रीय सभा के घोषणा-पत्र 'वर्जीनिया बिल ऑफ राइट्स' तथा संयुक्त राज्य द्वारा इसे अंगीकृत किया जाना, ऐसे ही क्रांतिकारी फलित हैं। यह 17वीं तथा 18वीं शताब्दी की विरासत थी। तीसरी दुनिया के देशों में 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में स्वतंत्रता आंदोलन के परिणामस्वरूप स्वायत्त प्रभुता संपन्न राष्ट्रों का उदय हुआ। इनमें से ज्यादातर देशों ने संघात्मक शासन पद्धति को अपनाया। कहने की जरूरत नहीं कि विधिसम्मत शासन को अंगीकार करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण मानवीय उपलब्धि है।

मानवाधिकारों के क्षेत्र में बीते छह दशकों का अनुभव गंभीर चिंतन का विषय बन गया है। सार्वभौम घोषणापत्र का पालन या औपनिवेशिक शासकों से स्थानीयजन तक सत्ता के हस्तांतरण या विभिन्न अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं के अंगीकरण से बुनियादी सचाई में कोई ठोस सकारात्मक बदलाव नहीं आया है। सचाई यही है कि मानवाधिकारों का व्यापक हनन हुआ है। 20वीं शताब्दी के अंत में मानवता ने पहले से कहीं अधिक हिंसक, निर्मम एवं अमानवीय दुनिया में कदम रखा। पर मनुष्य स्वभाव से आशावादी है। सब कुछ के बावजूद पीड़ित लोग अब भी पूरी दुनिया में उम्मीद का दामन थामे हुए हैं। यह जरूर है कि मनुष्य को दुनिया की सचाई को बदलने के लिए और अधिक सचेत एवं सतर्क पहल करने होंगे। इसके लिए मानवाधिकारों की शिक्षा पर खास तौर पर ध्यान देना होगा।

- मानवाधिकार शिक्षा के सामने तीन महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं - पहली, समकालीन सभ्यता की विभिन्न दुविधाओं का स्पष्टीकरण; दूसरी, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनुभवों का हस्तांतरण; तीसरी, बदलाव की प्रक्रिया में तेजी
- समकालीन सभ्यता के सामने कई असमंजस हैं, जो अंतर्विरोधों से पैदा हुए हैं। निजी स्तर पर ये अंतर्विरोध निस्वार्थ बनाम स्वार्थ और संस्थागत स्तर पर यह राज्य की शक्ति बनाम प्रजातांत्रिक संस्कृति में निहित है

मानवाधिकार शिक्षा के सामने तीन महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं-पहली, समकालीन सभ्यता की विभिन्न दुविधाओं का स्पष्टीकरण; दूसरी, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनुभवों का हस्तांतरण; तीसरी, बदलाव की प्रक्रिया में तेजी लाना। समकालीन सभ्यता के सामने कई असमंजस हैं, जो अंतर्विरोधों से पैदा हुए हैं। व्यक्तिगत स्तर पर ये अंतर्विरोध निस्वार्थ बनाम स्वार्थ में निहित है और संस्थागत स्तर पर यह व्यक्तिगत बनाम सामूहिक, राज्य की शक्ति बनाम प्रजातांत्रिक संस्कृति में निहित है। हमारे सामने विकास के जो नमूने हैं, वे यह अपेक्षा रखते हैं कि स्वहित ही उत्पादक बलों के तीव्र विकास को आगे बढ़ा सकता है। समाजवादी विश्व के संकट ने इस आम धारणा को पुष्ट किया है। संकट के बावजूद मानवीय स्वभाव में निहित श्रेष्ठता की संभावनाओं को पुनः तलाश करते हुए उसे महसूस भी करना होगा। इसके द्वारा सकारात्मक उपलब्धियों एवं ऊंचाइयों के बारे में 'ऐतिहासिक स्मृति' को पुनर्जीवित कर तथा उसका विवेचन कर भावी पीढ़ियों तक उसके हस्तांतरण को संभव बनाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों में अतीत की उपलब्धियों के प्रति उदासीनता न केवल अतीत को नकारती है बल्कि सामाजिक जीवन के उच्चतर क्षेत्रों में प्रवेश करने की समाज की क्षमता को भी कमजोर करती है। अतीत के आलोचनात्मक चिंतन से सामाजिक चेतना में बढ़ोत्तरी होती है, जो न केवल लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था के लिए बल्कि लोकतांत्रिक ढंग से जीवन जीने के लिए आवश्यक माहौल तैयार करती है। इस प्रयास को व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर जारी रखने की आवश्यकता है। मानवाधिकार शिक्षा, इस प्रक्रिया में मील का पत्थर साबित होगी।

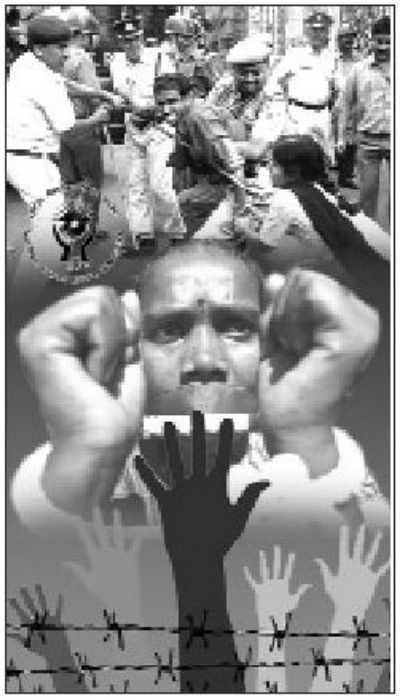

मानवाधिकार शिक्षा के तीन अलग-अलग पहलू हो सकते हैं- विकासवादी, सुधारात्मक तथा रूपांतरकारी। ये सभी पहलू जरूरी तौर पर एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। फिर भी उनके अपने अलग-अलग महत्व हैं। विकासवादी शिक्षा, मानवाधिकार शिक्षा के प्रति सबसे अधिक सुग्राह्य दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को मानकर चलता है। इसे व्यापक रूप से संतुलन केंद्रित कहा जा सकता है। इसमें बदलाव की संभावना कम होती है। यह आमतौर पर सीखने वाले को सूचना को ऊर्जा में तब्दील करने की क्षमता नहीं देता है। यदि सीखने वाले बच्चे हैं तो उन्हें अधिकारों की सूची को रटने तथा उसे परीक्षा में उतारने की जरूरत होगी। ऐसे में अधिकांश प्रशिक्षु कक्षा में पढ़ाए गए मानवाधिकारों को परीक्षा हाल से बाहर याद रखने की जहमत नहीं उठाते। इससे यह पता चलता है कि मानवाधिकार शिक्षा को परीक्षा तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। सुधारात्मक दृष्टिकोण, विकासवादी दृष्टिकोण से कुछ कदम आगे है। सुधारवादी दृष्टिकोण प्रशिक्षु की जानकारी को प्रभावित करना चाहता है। यह दृष्टिकोण सूचना की आनुष्ठानिक उत्पत्ति के महव को कम करता है तथा इसमें अधिकारों के प्रश्न को इसके ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही यह दृष्टि अधिकारों के लिए जन आंदोलनों तथा उनके बलिदानों की चर्चा करते हुए प्रशिक्षुओं को ऐतिहासिक प्रक्रिया के प्रति संवेदनशील बनाने में सहायक होता है। ऐसे दृष्टिकोण को यूनेस्को जैसी अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों का समर्थन व प्रोत्साहन भी मिलता है। मानवाधिकार शिक्षा पर यूनेस्को के दस्तावेज में कहा गया है, 'समाज की अन्य एजेंसियों की तरह स्कूलों पर मानवाधिकारों के सिद्धांतों की समझ विकसित करने तथा उनके अनुसार भावी नागरिकों की रुझान एवं व्यवहार को आकार देने में पूर्ण एवं प्रभावी रूप से अपनी भूमिका निभाने का दायित्व है।'

तीसरा दृष्टिकोण जिसे हम रूपांतरकारी अथवा मानववादी कह सकते हैं, व्यक्ति, समूह, समाज, राज्य एवं विश्व की व्यवस्था को बदलने पर जोर देता है। इसके अनुसार यह बदलाव न केवल अतीत की आलोचनात्मक समझ से बल्कि समकालीन सामाजिक-आर्थिक संदर्भ प्रदान कर हासिल किया जा सकता है। साथ ही, यह अपना ध्यान अन्याय एवं अत्याचार पर केंद्रित करता है। इसका उद्देश्य प्रशिक्षु को आहत, पीड़ित अथवा दुखियारी लोगों के प्रति संवदनशील बनाते हुए यह भी देखना है कि मनुष्य की चेतना गहरी हो एवं उसकी जड़ें ठोस सचाई में स्थापित हों। यह दृष्टिकोण समानता, स्वतंत्रता, शांति, न्याय तथा सुख शांति जैसे मूल्यों पर जोर देता है। इससे प्रशिक्षु मानव स्वभाव की उदात्त क्षमताओं पर विचार करता है। इसमें वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ कारक शामिल हैं। इस प्रयास के परिणामस्वरूप स्वार्थ, शक्ति की तलाश, धन संग्रह, अंधविश्वास, संकीर्ण सामाजिक संबंध आदि प्रवृत्तियों की आलोचनात्मक समीक्षा की जाती है।

(लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी हैं)